हिन्दू दुर्गा पूजा करके भी नहीं करते, वर्ना कश्मीर, बंगाल,असम में ये हालत नहीं होती

प्रतिवर्ष शरद-ऋतु में हिन्दू दुर्गा-पूजा मनाते हैं। स्वयं भगवान को राक्षसों पर विजय पाने के लिए दुर्गा-पूजा आवश्यक हुई थी। कवि निराला ने अपनी अदभुत कविता 'राम की शक्ति-पूजा' में उसे जीवन्त कर दिया है। क्या आज भी हम वही पूजा करते हैं ? जी नहीं।

आज दुर्गा-पूजा एक औपचारिक अनुष्ठान सा रह गया है। जीवन में तो लोग प्रायः दुर्बलता की शिक्षा देते और लेते हैं। अच्छे बच्चे का भी अर्थ है कि पढ़े-लिखे, लड़ाई-झगड़े में न पड़े। किसी दुर्बल को कोई सता रहा हो, तो वहाँ से हट जाए। कोई अपमानित करे, तो चुप रहे। क्योंकि उसे पढ़-लिख कर डॉक्टर, इंजीनियर या व्यवसायी बनना है। इसलिए बदमाश से उलझने में समय नष्ट होगा। इसी प्रकार, शासक, अफसर, पत्रकार, आदि भी मुँह देख कर कार्रवाई करते हैं। दबंगों, चाहे वे अकादमिक हों या बाहुबली, से हमेशा बच कर चलते हैं। इस प्रकार, सामाजिक भीरुता का पाठ चौतरफा प्रसारित होता रहता है।

अतः हम दुर्गा-पूजा करके भी नहीं करते ! इस का मर्म नहीं समझते कि दैवी अवतारों तक को अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा लेनी पड़ती थी। क्योंकि दुष्टों से निपटने के लिए निर्भीक और खुला शक्ति-संधान अनिवार्य है। अपंगों, आश्रितों और साधुजनों की रक्षा के लिए वह निर्विकल्प कर्तव्य भी है। लेकिन यह कर्तव्य अब हमें नहीं सिखाया जाता। इस से हमारा व्यक्तित्व दुर्बल हुआ। जो लोग गाँधीजी की तरह शारीरिक / शस्त्र बल को 'पशु बल' कहकर निंदा करते हैं, उन्हें दिमागी इलाज कराना चाहिए। निर्बल व्यक्तित्व में निर्बल मन रहता है। व्यक्तित्व की आम दुर्बलता अंततः राष्ट्रीय दुर्बलता में बदल जाती है। इस का लाभ केवल हर तरह के दुष्ट उठाते हैं।

यह पूर्वी बंगाल और कश्मीर के हश्र से देख सकते हैं। सत्तर साल पहले वहाँ व्यवसाय, बैंकिंग, डॉक्टरी, पत्रकारिता, शासन, आदि तमाम कार्यों में हिन्दू अग्रणी थे। लेकिन एक झटके में उन्हें सामूहिक रूप से मार कर भगा दिया गया। अन्य दुराचारों की कथा इतनी लज्जाजनक है कि हिन्दुओं से भरा भारतीय मीडिया उसे बताने में भी शर्माता है। क्या आपने कश्मीरी हिन्दुओं के अपने ही देश में शरणार्थी हो जाने पर भारतीय टीवी चैनलों पर कभी कोई वृत्त-चित्र या रिपोर्ट तक देखी, सुनी है ?

ऐसी दुर्गति चुपचाप सहने में कश्मीरी या बंगाली हिन्दू अकेले नहीं। असम, केरल, सीमावर्ती बिहार

आदि में कई स्थानों पर वही हो रहा है।

अब तो दिल्ली से निकट कैराना में भी हिन्दू भागे-भगाए जा रहे हैं। लेकिन किसी गाँधीवादी को सोचने की ताब नहीं कि गड़बड़ी कहाँ हुई! कश्मीरी हिन्दू ने तो किसी का बुरा नहीं किया था। उस ने तो गाँधी की मान कर दुष्टों से भी प्रेम दिखाया। विशेष प्रकार के संगठित हत्यारों को 'भाई' समझा, जो गाँधी किया करते थे। फिर भी बेचारों की न अपने देश में सुनी गई, न दुनिया में। उलटे हुर्रियत जैसे ही अदबो-इज्जत, इशरत-शोहरत पाते हैं। निरीह हिन्दुओं को मारने वाले 'भूतपूर्व' आतंकवादियों को हमारे टीवी चैनल अपने यहाँ बुलाकर धन्य होते हैं। अंग्रेजी अखबार उन के इंटरव्यू छापते नहीं थकते। तब हिन्दुओं के मन में प्रश्न उठता है। किन्तु अच्छे बच्चे की तरह वह इस प्रश्न को भी सामने नहीं आने देते। सत्य-प्रेमी, समाजवादी और सेक्यूलर संपादक, प्रोफेसर ऐसे लेखों, किताबों को सेंसर कर देते हैं!

हिन्दू दिमाग की यह पूरी भीरु प्रक्रिया बिगड़ैल बच्चे जानते हैं। वे देखते हैं कि भारत खूँखार जिहादियों को पकड़ के भी सजा नहीं दे पाता। बाहरी या भीतरी, सभी हिंसक गिरोहों, बदमाशों, आदि से बार-बार केवल बात-चीत करता है। इस तरह 'सब ठीक हो जाएगा' की आत्म-प्रवंचना रचता है। देशी राजनीति में मुस्लिम नेता हर हिन्दू नेता को इस्लामी टोपी पहनाने की कोशिश करते हैं, मगर कभी खुद रामनामी नहीं ओढ़ते या तिलक लगाते। उन के रोजे-इफ्तार में हिन्दू नेताओं की हाजिरी रहती है, मगर मुस्लिम रहनुमा कभी होली, दीवाली, पूजा मनाते नहीं देखे जाते। यह एकतरफा सदभावना और सेक्यूलरिज्म भी हिन्दू भारत की विचित्रता ही है।

अच्छा बच्चा समझता है कि उस ने दबंगई को सहकर, या गाँधीजी सी मीठी बातें दुहराकर, या उद्योग, व्यापार, कम्प्यूटर में जगह बना कर दुनिया के सामने अपनी लज्जा बचा ली है। मानो किसी ने नहीं देखा कि वह अपने को, अपने देशवासियों को दुष्टों, गुंडों, उग्रवादियों के हाथों अपमानित, उत्पीड़ित होने से नहीं बचा पाता। अपनी मातृभूमि का अतिक्रमण नहीं रोक पाता। उस की सारी कार्यकुशलता इस वेदना का उपाय नहीं जानती।

हिन्दू बच्चे मौन रखकर हर बात आयी-गयी करने की कोशिश करते हैं। इस से उन की स्थिति छिपती नहीं, बल्कि उजागर होती है। डॉ. अंबेदकर की पुस्तक 'पाकिस्तान या भारत का विभाजन' (1940) में अच्छे और बिगड़ैल बच्चे, दोनों की संपूर्ण मन:स्थिति और परस्पर नीति अच्छी तरह दर्ज है। मगर अच्छे बच्चे ऐसी पुस्तकों से भी बचते हैं! वे केवल गाँधीजी की मनोहर पोथी 'हिन्द स्वराज' पढ़ते हैं, जिस में लिखा है कि आत्म-बल तोप-बल से भी बड़ी चीज है। मगर कोई सुफल न पाकर राजनीति को रोते हैं। कभी नहीं सोचते कि क्या राम, कृष्ण, शिव या दुर्गा के पास आत्म-बल नहीं था? तब वे धनुष-बाण, चक्र और त्रिशूल क्यों धारण करते थे?

दरअसल, गलत विचारों के प्रभाव में भारत में अच्छे बच्चे को दब्बू बच्चे का पर्याय बना दिया गया, जिस से बिगड़ैल और शह पाते रहे। यह लंबे समय से चल रहा है। शक्ति-पूजा भुलाई जा चुकी है। यह इसलिए हुआ क्योंकि पहले सच्ची सरस्वती-पूजा भुला दी गई। हमारी शिक्षा व्यवस्था मृत-प्राय हो चुकी है। उस के नाम पर केवल बिजनेस, जैसे-तैसे पैसा बनाने और किसी रोजगार का उपाय – यही करना-करवाना एकमात्र 'एजुकेशनल' गतिविधि है। लगभग सभी सामाजिक, धार्मिक और राजनीति

संगठन इसी का अंधानुकरण कर रहे हैं। इस तरह, सब ने दुर्गा और सरस्वती-पूजा को निर्जीव बाह्याचारों में बदल कर छोड़ दिया है।

यदि भारत का अस्तित्व बचना है तो सच्ची शिक्षा लेनी पड़ेगी कि अच्छे बच्चे को चरित्रवान और बलवान भी होना चाहिए। जीने के लिए ही नहीं, आत्मरक्षा के लिए भी परनिर्भर होना अनुचित है। मामूली धौंस-पट्टी या लोकल गुंडों तक से निपटने के लिए सदैव प्रशासन भरोसे रहना न व्यवहारिक है, न सम्मानजनक, न हमारी शास्त्रीय परंपरा।

अपमानित होकर जीना मरने से बदतर है – इस सरस्वती को हृदय में बिठाना होगा। तभी दुर्गा का प्रसाद भी मिलेगा। दुष्टता सहना या उस से आँखें चुराना दुष्टता को प्रोत्साहन है। रामायण और महाभारत ही नहीं, महान यूरोपीय, अमेरिकी चिंतन में भी यही सीख है। हाल तक यूरोप में द्वंद्व-युद्ध की परंपरा थी, जिस में किसी से अपमानित होने पर भले आदमी से आशा की जाती थी कि वह द्वंद्व की चुनौती देगा। चाहे उस में जान ही क्यों न चली जाए।

कश्मीर के विस्थापित कवि डॉ. कुन्दनलाल चौधरी ने अपने कविता-संग्रह 'ऑफ गॉड, मेन एंड मिलिटेंट्स' में प्रश्न रखा है – "क्या हमारे देवताओं ने हमें निराश किया या हम ने अपने देवताओं को ?" दरअसल, यह प्रश्न संपूर्ण हिन्दू भारत से था। जिस का सही उत्तर यही है कि हम ने देवताओं को निराश किया। उन्होंने तो विद्या की देवी को भी अस्त्र-शस्त्र-सज्जित बनाया था ! जबकि हम ने शक्ति की देवी को भी मिट्टी की मूरत में बदल कर छोड़ दिया।

केवल चीख-चीख कर रतजगा करना देवी-पूजा नहीं है। पूजा है संकल्प लेकर चरित्र और शक्ति का संधान करना। ससम्मान जीने हेतु मृत्यु का वरण करने के लिए भी तैयार रहना। किसी तरह चमड़ी बचाकर नहीं, बल्कि दुष्टता की आँखों में आँखें डालकर जीने की रीति-नीति बनाना। यही शक्ति-पूजा है, जिसे भारत के हिन्दू भुला बैठे हैं। उन्हें भीरुता को 'व्यवहारिकता' समझने की चतुराई से मुक्त होना होगा। अन्यथा उन का ठोस और भावात्मक, दोनों अस्तित्व सिकुड़ता जाएगा।

साभार- http://www.nayaindia.com/ से